ओ३म् परमात्मने नमः

श्री १०८ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के गुरु

श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती दण्डीजी का

भवानी

जीवनचरित्र

पुस्तकालय

श्रीयुत धर्मवीर पं० लेखराम जी आर्य्यपथिक कृत उर्दू से

मुन्शी [illegible]प्रसाद अनुवादित

[illegible]

पं शंकरदत्त शर्मा ने अपने [illegible]

"शर्मामैशीन प्रिंटिंग प्रेस" मुरादाबाद में छापकर प्रकाशित किया।

आर्य्य वत्सर १९७२९४९०१२ दिसम्बर १९१३

मूल्य -)

1788

ओ३म्

भूमिका ।

सर्व सज्जन पुरुषों को विदित है कि श्री स्वामी विरजानन्द जी सरस्वती कैसे अलौकिक प्रभाशाली विद्वान् थे। उनकी विद्वत्ता के प्रकट करने वाला बस यही हेतु पर्याप्त है कि वे स्वामी दयानन्द जी के गुरु थे। उन्हीं के सच्चरित्रों का संगठन धर्मवीर पं० लेखरामजी ने उर्दू में किया था कि जिसका अनुवाद मुन्शी जगदम्बाप्रसाद जी ने हिन्दी भाषा में किया। इस का प्रचार सब हिन्दी जगत् में हो यह समझ कर ही मैंने इसे अति शुद्धतापूर्वक छाप कर प्रकाशित किया है। आशा है कि ग्राहकगण इसे खरीद कर अन्य ग्रन्थों के प्रकाशित करने में भी मुझे उत्साहित करेंगे।

निवेदक—

शंकरदत्त शर्म्मा

श्री १०८ महर्षि स्वामीदयानन्द सरस्वती जी के गुरु श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती दण्डी जी का

जीवनचरित्र

३.२६.१ आ.श्री

यौगिक शब्दों के पारस पत्थर की खोज करने वाले ऋषि विरजानन्द सरस्वती स्वामी ॥

पञ्जाबदेश के कर्तारपुरप्रान्त के एक छोटे से गङ्गापुर नामक ग्राम में व्यास नदी के किनारे महाराज रणजीतसिंह के राज्य समय में एक नारायणदत्त नाम का ब्राह्मण सारस्वत भारद्वाजगोत्र शारद जाति का रहता था। कौन जानता था कि इस के गृह में वह मणि उत्पन्न होगी कि जो पृथिवी की काया पलटाने के लिये बीज का काम करेगी। कौन कह सक्ता था कि नारायणदत्त का नाम संसार के इतिहास में लिखा जायगा। और किस को ज्ञात था कि आर्य्यों के गुप्त विद्या भण्डार तथा मनुष्यमात्र के मुख्य धन वेद के विश्वास को प्रचार करने की विधि का पारस पत्थर इस के सपूत के हाथ पड़ेगा। १०० सौ वर्ष व्यतीत हुये कि नारायणदत्त के यहां संवत् १८५४ विक्रमी में एक बालक ने जन्म लिया। ढाई वा पांच वर्ष की अवस्था में यह बालक विषूचिका रोग से ग्रस्त हुआ। इस दुःखदायक रोग के कारण बालक चक्षुहीन हो गया। आठ वर्ष की अवस्था पर्य्यन्त इस को पिता सारस्वत और संस्कृत पढ़ाते रहे। ११ वर्ष की आयु तक उक्त बालक का पालन पोषण माता पिता के द्वारा होता रहा। परन्तु बारह-

व वर्ष में इस को माता पिता के देहान्त होने के कारण अपने भ्राता के शरण में आना पड़ा। परन्तु इस अधोगति के कराल काल में प्रायः भ्राता शब्द से शत्रु और भ्रातृपत्नी से दुःखदायिनी माना जा चुका था। बारहवें वर्ष ही में भाई भौजाई उस अन्धे बालक को रोटी के स्थान में गाली देने लगे और दुःखों से बालक का प्राण सङ्कट में पड़ गया। भाई भौजाई की कठोरता के कारण उस १२ वर्ष के बालक ने अन्त में वन का मार्ग पकड़ा और सदा के लिये उन से बिदा हुआ। दुःखों पर दुःख झेलता हुआ वा कर्मफल भोगता हुआ यह लड़का अतिकठिनता से हृषीकेश में पहुंचा। उस समय इसकी आयु लग भग १५ वर्ष की थी। देश काल का रङ्ग ढङ्ग देखने पर तथा भ्राता तक का विरुद्ध होना समझ उदास और निराश हो जगत्पिता की तपस्या में तत्पर होकर अपने दग्ध हृदय को शान्ति देने लगा। तथा च कहा जाता है कि तीन वर्ष गङ्गा में खड़े होकर गायत्री का परम जप उत्तम रीति से करते हुये मन और अन्तःकरणरूपी चक्षु में ज्ञान का अञ्जन लगा कर प्रकाशित किया। खाने पीने के लिये जो कुछ फल फल मिल जाता उसे खा लेते, नहीं तो भूखे रह कर समय व्यतीत करते। भिक्षा कभी किसी से न मांगते थे, परन्तु अत्यन्तावश्यकता पर किसी मठ से कुछ अन्न ले लिया करते थे। यह नवयुवक बाल्यावस्था को समाप्त करके एक तपस्वी की अवस्था को प्राप्त हो गये। हृषीकेश उस समय आज कल के समान घनी वसति और सुखदायक स्थान न था, इस कारण हानिकारक पशु चारों ओर रात्रि को गर्जा करते थे। परन्तु यह धैर्यवान् ईश्वराश्रित ऐसी भयानक जगह में ही तपस्या द्वारा प्रज्ञाचक्षु प्राप्त करने का यत्न करते थे। जब इसी प्रकार

तीन वर्ष साधन और तपस्या में व्यतीत होगये तो एक रात्रि को इन्हें स्वप्न में ऐसा प्रकट हुआ कि "जो तुम को होना था वह हो गया अब यहां से चले जावो" तथाच—वह नवयुवक तपस्वी बड़े साहस से उस भयानक वन को पार करके १८ वर्ष की अवस्था में हरद्वार आ पहुंचा। तथा यहां पर एक विद्वान् गौड़ स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी से इन की भेंट हुई। तथा इसी स्थान पर उस से इन विरक्त वीर ने संन्यास ग्रहण किया और अपना नाम विरजानन्द रक्खा। यह स्वामी उत्तरदेशीय पहाड़ के निवासी थे। इन से संन्यास लेने के पश्चात् विरजानन्दजी ने विद्योपार्जन का विचार किया। तपस्या करने के पश्चात् इन की कविताशक्ति जाग उठी थी, इस से इन्होंने रामचरित्र सम्बन्धी श्लोक रचे।

बहुत काल तक हरद्वार में रह कर एक ब्राह्मण से मध्यकौमुदी षड्लिङ्ग पर्यन्त पढ़ी। और इस के पश्चात् स्वयं विद्यार्थियों को पढ़ाना आरम्भ किया। यहाँ तक कि स्वयं भी मध्यकौमुदी पढ़ाने लग गये। वहां से चल कर कुछ दिन कनखल ग्राम में रहे, और किसी की सहायतासे वहां पर सिद्धान्तकौमुदी विचारते और विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। कनखल से गङ्गा के किनारे २ काशी को पधारे, जहां पर एक वर्ष से कुछ अधिक ठहर कर मनोरमा, शेखर, न्याय, मीमांसा और वेदान्त के ग्रन्थ पढ़े। अपने अध्ययन के साथ ही विद्यार्थियों को भी बराबर पढ़ाते रहे। वहाँ अपनी विद्या के कारण प्रज्ञाचक्षु स्वामी की उपाधि से प्रतिष्ठित हुये। वहां से गया नगर की ओर २२ वर्ष की आयु में पैदल प्रस्थान किया। मार्ग में एक स्थान पर उन को दुष्ट चोरों ने चारों ओर से घेर कर पकड़ लिया। दैवयोग से वहां दक्षिण देश ग्वालियर राज्य

के सरदार एक पण्डित सहित उतरे हुये थे। इस की चिल्लाहट पर उक्त सरदार के नौकरों ने पुकारा, तिस पीछे विरजानन्द जी ने सब वृत्तान्त संस्कृत में सुना दिया, जिस के सुनते ही पण्डित झट पट सहायतार्थ पहुंच गये और चोरों से महात्मा को बचा लिया। वे डरपोक चोर भाग गये और सरदार के नौकर लोग स्वामीजी को डेरे पर ले आये। बड़े आदर सत्कार से प्रज्ञाचक्षु स्वामी का पांच दिवस पर्यन्त उन्होंने आतिथ्य सत्कार किया। छूट दिन यहां से विदा हो स्वामी जी गया को पधारे। दीर्घकाल तक गया में वेदान्तशास्त्र पढ़ने पढ़ाने से विज्ञान बढ़ने पश्चात् बङ्गाल की राजधानी कलकत्ता को गये और वहां से लौटते हुये सोरों ग्राम में जो गङ्गा के तट पर है, बहुत दिन तक विचार में निमग्न रहे।

इन्हीं दिनों अलवर के महाराज विनयसिंह सोरों में गङ्गास्नान को आये थे। जिस समय वे स्नान कर रहे थे उस ही समय पर गङ्गा में खड़े हुये मधुर उच्च स्वर से शङ्कराचार्य का "विष्णुस्तोत्र' पाठ कर रहे थे। महाराजा इनकी सुरीली रसीली मनोरञ्जनी वाणी सुन के मोहित हो गये और पत्थरसदृश स्थिर हो के सुनते रहे। जब यह समाप्त करके जल से बाहर निकले तो महाराजा ने निवेदन किया कि भगवन्! आप मेरे साथ अलवर को चलें। स्वामीजी ने यह कहते हुये कि "आप राजा हैं और मैं त्यागी हूं मेरा आप का कोई सम्बन्ध नहीं" अङ्गीकार न किया।

तत्पश्चात् महाराजा विनयसिंह जी स्वामी जी के पास बाग में स्वयं ही गये। तथा बहुत कुछ प्रार्थना करने से विद्या पढ़ने की प्रतिज्ञा करने पर स्वामी जी उन के साथ गए। महाराजा ने उस समय प्रतिज्ञा करली थी कि मैं प्रतिदिन तीन घंटे

पढ़ा करूंगा। तथा यदि मैं किसी दिन न पढ़ूं तो आप निस्सन्देह चले आइएगा। इस नियम पर प्रज्ञाचक्षु जी इनके साथ अलवर को गये और वहाँ तीन चार वर्ष तक महाराजा को पढ़ाने तथा स्वयं भी ज्ञान ध्यान करने में लगे रहे॥

गम्भीरबुद्धि और सत्यवादी होने के कारण इस राज्य में स्वामीजी का धर्मात्मा लोग अतिमान करते थे। परन्तु स्वार्थी और मिथ्या प्रशंसा करने वाले (खुशामदी) ब्राह्मण इन की आकृति से भी घृणा मानते थे। तथा इसी लीला में मग्न रहते थे कि येन केन प्रकारेण विरजानन्द जी को महाराजा की दृष्टि से गिरा देवें परन्तु महाराजा उनको सच्चा अपूर्व साहसी (बे धड़क) चित्त वाला जानते हुए सर्वदा उन की पूरी प्रतिष्ठा करते थे। यद्यपि महात्मा को ज्ञात हो गया था कि बुभुक्षित लोग द्वेषाग्नि से जलते हुए गुप्तरूप से महाराजा के कानों तक मेरी निन्दा पहुंचा रहे हैं, परन्तु उक्त महात्मा सिंह सदृश निडर अपने कार्य में तत्पर रहे तथा कदापि सिद्धान्तों से गिरने का नाम तक न लिया। महाराजाजी ने स्वामी जी के रहने को एक बहुत सुन्दर गृह दिया था। तथा पुस्तकें और अन्य आवश्यक सामग्री भी एकत्रित करदी थी। मानो कई सहस्र का धन स्वामी जी के हाथ में था॥

महाराजा अपनी प्रतिज्ञानुसार प्रतिदिन स्वामी जी से पढ़ने को आया करते थे, परन्तु एक दिन नाच तमाशे आदि में रहने के कारण बिना सूचना पढ़ने को न गये। स्वामी जी उचित समय पर प्रतीक्षा करते हुए महाराजा की बाट देख रहे थे, परन्तु न तो महाराजा स्वयं ही गए और न किसी दूत द्वारा वृत्तान्त भेजा। अनन्तर जब महाराजा बहुत समय बिता कर आये तो व्रतधारी तपस्वी ने जो आप नियम में चलना और अन्यों को नियम में चलाना चाहते थे, प्रतिज्ञा न पालने के विषय में महाराजा से अपनी अप्रसन्नता प्रकट की और

सरल वाणी से कहने लगे कि आप ने प्रतिज्ञा भङ्ग की है, परन्तु मैं प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं कर सक्ता। अतएव मैं अब यहां नहीं रह सक्ता। महाराजा उनको रक्खा चाहते थे परन्तु वे व्रतधारी प्रतिज्ञा तोड़ कर कब रह सक्ते थे? तथाच एक दिन स्वामी जी विना सूचना दिए ही वहां से चल पड़े, तथा सहस्रों के धन और पुस्तकों को वहां ही छोड़ा। केवल भविष्यत् व्यय के लिये ढाई सहस्र रुपया अपने सङ्ग ले लिया और भरतपुर में पहुंचे।

वहां महाराजा बलवन्तसिंह के यहां षट्मास पर्यन्त रहे और जब विदा होने लगे तो महाराज ने आदर सत्कार के लिए ४००) रुपया और एक दुशाला भेंट किया। वहां से मुड़सान ग्राम में आये और राजा साहब टीकमसिंह जो मुड़सान निवासी के अतिथि हुवे। तत्पश्चात् सोरों स्थान को गए जहां पर इन को रोग ने ग्रस लिया और ऐसे रोगी होगये कि जीवनाशा तक न रह गई थी। परन्तु विरजानन्द जी को संसारमें किसी गुप्त कोष की कुञ्जी सौंपनी थी। यदि वे महात्मा उस समय मृत्यु को प्राप्त हो जाते तो कौन मान सक्ता है कि संसार में कभी भी विरजानन्दजी का नाम सुना जाता। शनैः२ रोग घटने लगा और स्वामी जी दुबारा फिर संसार में विचरने लगे॥

वहां से चलकर स्वामी जी संवत् १८९३ वि० में यमुना नदी के तट पर मथुरा नगर को पधारे। यहां पर गताश्रम नारायण के मन्दिर में कई दिन विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे और तत्पश्चात् अपना ही एक वासस्थान किराए के गृह में नियत करके नियमपूर्वक पाठशाला बना के सिद्धान्तकौमुदी मनोरमा न्यायमुक्तावली न्याय कोष व कई वैदिक ग्रन्थ पढ़ाने लगे॥

कुछ दिनों पश्चात् ऐसा हुवा कि वैष्णव सम्प्रदाय के

विख्यात आचार्य जिनका नाम रङ्गाचार्य था मथुरामें आये और उन्होंने सेठ राधाकृष्ण को अपना शिष्य किया। जिन दिनों रङ्गाचार्य मथुरा में थे उन्हीं दिनों का का वृत्तान्त है कि इनके गुरु कृष्ण शास्त्री दक्षिण से पधारे थे। कृष्ण शास्त्री न्याय और व्याकरण के प्रसिद्ध विद्वान् थे। एक दिन शास्त्रीजी के दो विद्यार्थियों (लक्ष्मणज्योति और मुरुमुरिया पण्ड्या) का शास्त्रार्थ विरजानन्द जी के दो विद्यार्थियों (चौबे गङ्गादत्त और रङ्गदत्त) से हो पड़ा। कृष्ण शास्त्री के विद्यार्थियों ने पूंछा कि "अजाद्युक्ति" इस वाक्यमें कौन समास है। स्वामीजी के विद्यार्थियों ने कहा कि षष्ठीतत्पुरुष है। कृष्ण शास्त्री के विद्यार्थियों ने कहा कि नहीं सप्तमीतत्पुरुष है। इस झगड़े को दोनों ने जाकर अपने गुरुओं से कहा। कृष्ण शास्त्री ने विद्यार्थियों से कहा कि इस में सप्तमीतत्पुरुष हो सक्ता है षष्ठीतत्पुरुष नहीं बन सक्ता। दण्डी विरजानन्द जी ने कहा कि षष्ठीतत्पुरुष है, सप्तमी नहीं। इस बात पर दोनों ओर वालों का शास्त्रार्थ होना स्थिर हुआ। तथा २००) दो सो रुपये प्रत्येक की ओर से हार जीत के रक्खे गये। सेठ राधाकृष्ण जी इस में मध्यस्थ बने जिन्होंने १००) एक सौ रु०अपनी ओर से भी रख दिया। यह कुल ५००) सेठ जी की दुकान में जमा कर दिया गया और गताश्रम नारायण का मन्दिर शास्त्रार्थ के लिये नियत हुआ। नगर में वनाग्नि के सदृश इस शास्त्रार्थ की चर्चा सर्व साधारण में फैल गई तथा मथुरानिवासी जिनको चौबे और पहलवानों के दङ्गल देखने का अभ्यास था अब विद्यारसिक पहलवानों के युद्ध देखने के सच्चे अभिलाषी हो रहे थे। नियत दिवस को सन्ध्या समय सब लोग इस विद्या के अखाड़े को देखने के लिये एकत्रित हुए तथा च नियत समय पर दण्डी जी ने अपने विद्यार्थी भेजे कि

यदि कृष्ण शास्त्री आये हों तो हम चलें। परन्तु कृष्ण शास्त्री न आए। जब दण्डी जी के विद्यार्थी गये तो सेठ जी ने दोनों ओर के विद्यार्थियों में शास्त्रार्थ आरम्भ करा दिया तथा कुछ देर शास्त्रार्थ कराने के पश्चात् यह प्रसिद्ध कर दिया कि दण्डी जी हार गए तथा यमुना मैया की जय २ करने वाले लट्ठमारों को रुपैया बांटना आरम्भ कर दिया। सत्यप्रिय सज्जनगण आश्चर्य करके चकित रह गये कि कि यह क्या हुआ तथा दण्डी जी क्यों हार गये और कृष्ण शास्त्री क्यों कर जीत गये जब कि इन दोनोंका शास्त्रार्थ ही नहीं हुआ। इससे बात होता है कि कृष्ण शास्त्री ने डूबते को तिनके का सहारा समझ के यह ढोंग बनाया था। परन्तु दण्डी जी की पराक्रमशालिनी बुद्धि इस बात का निर्णय किये बिना कब रह सक्ती थी। यह कब सम्भव था कि दण्डी जी अन्याय और अधर्म की कार्यवाही की पोल न खोलें। तथाच महाराज दण्डी जी ने मथुराके कलक्टर श्रीमान् अलग्जण्डर सा० से मिल कर कहा कि या तो सेठजी से मेरा रुपया दिलवा दीजिये नहीं तो कृष्ण शास्त्रीसे शास्त्रार्थ कराइये। इस पर उक्त श्रीमान् ने यह उत्तर दिया कि इस में हम हस्तक्षेप नहीं कर सक्ते। सेठ धनाढ्य है अत एव आप उस से झगड़ा न करें, जिस विषय में आप १) व्यय करेंगे उस में वह १०००) कर सक्ता है॥

सेठ जी ने इस बीच में व्यवस्थाविक्रेता पण्डितों के पास शास्त्रार्थपत्र भेजा और उनसे व्यवस्था मांगी कि किस का पक्ष सच्चा और किस का झूंठा है। इस समय पं० काकाराम शास्त्री, गौड़ स्वामी काशीनाथ शास्त्री आदि विद्वान् काशी में जीवित थे। इन उक्त विद्वानों को घूंस देकर सेठ ने इन धर्म विक्रय करने वाले जीवित देहधारियों परन्तु मृतसदृश से

अपने पक्ष की पुष्टि में हस्ताक्षर ले लिये ।
दण्डी जी ने अपना पत्र उन के पास भेजा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यद्यपि आप का पक्ष सत्य है परन्त हम प्रथम से सेठ जी के पत्र (कागज़) पर हस्ताक्षर कर चुके हैं अतएव आप का उत्तर नहीं दे सक्ते। पण्डितों की ओर से यह उत्तर देख कर दण्ड जी के मनमें धर्म और आचारसे रहित विद्वानों की ओर क्या २ विचार हुये होंगे ? क्या उस समय दण्डी जी के शुद्ध मन ने अनुभव नहीं किया होगा कि भारतवर्ष के शिरोमणि पण्डित आत्मघात करते हुये ऋषिसन्तान को कलङ्कित कर रहे हैं। क्या उनके सरल हृदयमें शोक नहीं हुआहोगा कि टके के बदले धर्म बिक रहाहै। इस महान् पापाचारको देखकर दण्डी जी के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ और धन्य है वह उचित क्रोध जो पाप नष्ट करने के लिये सरल आत्मा में उत्पन्न हो। उन के मनमें यह विचार हुआ कि कुछ यह आवश्यक नहीं कि और नगरों के पण्डितों ने भी टके को ही धर्म (ईमान) मान रक्खाहो। अतएव आगरादि स्थानों के पण्डितों की सम्मति लेना आवश्यक है। सम्भव है कि वह निष्पक्षता से सत्य को प्रकट करें। तस्मात् उसी धुनि में वे आगरा को गये । और सदर बोर्ड (उच्चकचहरी) में साहब बहादुर से मिले । इन दिनों वहाँ चरणजीव शास्त्री धर्मशास्त्र का व्यवस्था देने वाले थे जिनको सर्कार से ३००) रु० मासिक मिलता था। दण्डी जी उन से भी मिले और कहा कि या तो तुम मेरे रुपये दिला दो नहीं तो मेरे पत्र पर हस्ताक्षर करो। उन्होंने भी वही उत्तर दिया कि हम भी हस्ताक्षर कर चुके हैं। आप झगड़ा न करें, आप को रुपया कदापि न मिलेगा। कहते हैं कि इन को सेठ जी ने उक्त स्वार्थ निमित्त ३००) दिये थे। जब दण्डी जी

देखा कि इस समय पाप प्रबल हो रहा है और सत्य की कोई नहीं सुनता तो हार मान कर घर जा बैठे। कौन जानता था कि यह घटना उन के जीवन में नहीं २ वरन संसार के इतिहास में एक अद्भुत परिवर्तनशालिनी होगी। कौन कह सक्ता था कि सेव का गिरना न्यूटन * महाशय को पुनर्वार आर्यसिद्धान्त का दर्शन करायेगा। किसने जाना था कि ढकने का खड़कना † स्टीम इञ्जन (धुवें की कलों) आदि की उत्पत्ति का चिन्ह बनेगा। कौन जानता था कि † कोलम्बस महाशय का मार्ग भूल जाना सहस्रों वर्ष से गुप्त भूभाग का दर्शन करायेगा। महान् पुरुषों के इतिहासों में साधारण घटनायें ही

---

* ये यूनान देशीय विद्वान् थे, सेव फल का वृक्ष से नीच पृथिवी पर गिरना देख कर इन्होंने इस बात पर विचार दौड़ाया कि यह फल नीचे क्यों गिरा ऊपर क्यों न चला गया। अनन्तर उन्होंने यह सिद्ध किया कि आकर्षणशक्ति से ऐसा हुआ और साइन्स विद्या का मूल यही है॥ (अ० जगदम्बा०)

† पानी और आग से भाप द्वारा रेलादि का चलना जो विद्या है इस को एक यूनान देशीय ने इस तरह प्रकट किया कि एक समय दाल की बटुली के ऊपर रक्खा हुआ ढकना हिलने लगा इस से उस ने यह सिद्धान्त निकाला कि आग से पानी भाफ बनकर बड़ी भारी शक्ति रखता है। तत्पश्चात् उस ने रेल के इञ्जन की कल निर्माण की (अ० जगदम्बा प्र०)

† कोलम्बस नामी स्पेन देश वासी भारत वर्ष की खोज के लिये समुद्र में चले थे परन्तु जहाज़ दूसरी ओरको चला गया इस से अमेरिका अर्थात् पाताल देश का पता लग गया। (अ० जगदम्बा प्र०)

उन के भविष्यत् असाधारण होने के लिये आदि स्तम्भ प्रमाणित हुई हैं। और सचमुच यही अवस्था विरजानन्द जी के साथ इस प्रत्यक्ष पराजय से हुई।

एमर्सन महाशय का यह कथन ठीक है कि मनुष्य में शक्ति बल की दुर्बलता से उत्पन्न होती है तथा मनुष्य को जब अति दुःख और पीड़ा होती है तभी वह उत्तम और बड़े २ कार्यों के करने योग्य बन जाता है। मानों दुर्बलता और पराजय जीवित आत्मा में शक्ति उत्पन्न करने का सामर्थ्य रखते हैं। तथा इस प्रत्यक्ष पराजय ने विरजानन्द के जीवित आत्मा पर ठीक यही परिणाम डाला। यद्यपि वह जानते थे कि मैं सत्य पर हूं परन्तु इनके पास और कोई उत्तम साक्षी न थी जो उनके पक्ष की अच्छी तरह पुष्टि करती और काशी तथा आगरा के धर्मविक्रेता पण्डितों के विरुद्ध सबके सामने सत्य की साक्षी दे सकता। इस प्रकारकी साक्षी ढूंढ़ने के निमित्त वह इधर उधर संस्कृत के ग्रन्थों की छान बीन करने लगे। वह चाहते थे किसी ऋषि की साक्षी मिले। जिससे कि यह आर्यसिद्धान्त कि "सत्य की जय होती है" सत्य ही प्रमाणित (साबित) हो जावे॥

इस खोज ही में थे कि दण्डी जी ने प्रातःकाल एक दक्षिणी ब्राह्मण को अष्टाध्यायी पाठ करतेहुये सुना। यह ब्राह्मण प्रतिदिन नियमपूर्वक पाठ करता था परन्तु भित्ति (दीवारों) पर पाठ का क्या प्रभाव पड़ सक्ता है। किन्तु जब इस पाठ की ध्वनि विरजानन्द जी की धर्मप्रिय जिज्ञासु आत्मा के निष्पक्ष श्रोत्रों में पहुंची तब वह आत्मा मानो समाधिस्थ होकर महर्षि पाणिनि के अनमोल सूत्रोंको सुनने लगा। जब तक उस (पण्डित) ने अष्टाध्यायी का सम्पूर्ण पाठ समाप्त न किया तब तक एक चित्त विरजानन्द जी की वृत्ति उसी में खचित रही, और तत् पश्चात् सुने हुये पाठ का विचार उस के आत्मा के उस समय

के हर्ष का अनुमान कौन कर सक्ता है जिस समय कि इनको निश्चय हो गया था कि अष्टाध्यायी ही निस्सन्देह ऋषिकृत ग्रन्थ है तथा यही ५००० पांच सहस्र वर्ष से संस्कृतविद्या के गुप्त बहुमूल्य कोष के प्रकट करने का एक मात्र साधन था।

कोलम्बस महाशय ने अमेरिका का पृथिवी की सृष्टि नहीं की थी किन्तु खोज मात्र किया था। इञ्जन बनाने वाले ने भाफ को उत्पन्न नहीं किया वरन उस के गुणों को जाना। ठीक इसी प्रकार विरजानन्दजी ने अष्टाध्यायी को रचा नहीं किन्तु पूर्व विरचित इस अष्टाध्यायी की महिमा को जिसका नाममात्र साधारण पंडित लोग भाफसदृश जानते थे, अनुभव किया।

भाफ की महिमा अनुभव करने वाले ने संसार में क्या कर दिखाया और ऋषिकृत अष्टाध्यायी के गुणों और महिमा को अनुभव करने वाले विरजानन्द अब क्या कुछ नहीं करेंगे। अष्टाध्यायी ने जिज्ञासु को निश्चय करा दिया और साक्षी देदी कि तू सत्यपर है और कृष्ण शास्त्री झूंठा है। अष्टाध्यायी पश्चिमीय हिन्द (अमेरिका वा पाताल) के टापू के सदृश थी जो कि ऋषियों के समय को प्रख्यात करने वाले विरजानन्द के हस्तगत हुई जो (ऋषियों का समय) ५ पांच सहस्र वर्ष से गुप्त था। परन्तु जैसे (अमेरिका के मिलने पर) ब्राजिल व मेक्सको ज्ञात हुये बिना कब रह सके थे वैसे ही अष्टाध्यायी के मिल जाने पर उस की व्याख्या महाभाष्य जो अष्टाध्यायी से घना सम्बन्ध रखती है विरजानन्द के हाथ लग गई। तथा इन्हीं दो पुस्तकों के मनन से उन को दो और ज्योतिःस्तम्भ जिन का नाम निरुक्त और निघण्टु है सूझ दिये। तथाच वे संसार को आर्यों की सभ्यता, आर्यों के शास्त्र, आर्यों की विद्याओं और कलाओं तथा सर्वोन्नतियों और उन विद्याओं और

कलाओं के नित्यप्रयोगकारी वेदों तक का मार्ग और श्रेष्ठ मार्ग अष्टाध्यायी महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त को बतला रहे हैं। उन का परोपकारी, परिश्रमी, सत्यप्रिय आत्मा इस अमूल्य धनको सर्वसाधारण तक पहुंचानेका विचार कररहा है॥

तथा इसी कारण से विरजानन्द ने अपनी आयु संवत् १९१४ से लेकर मरणपर्यन्त ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रचार के लिये व्यतीत किया ॥

मिस्र देश की पुरानी सभ्यता और प्राचीनता के विषय में पश्चिमीय भूभाग (योरोप देश) ने तब से ठीक २ विश्वास किया कि जब रोज़ीटा स्टोन उन के हाथ लगा। कहते हैं कि जब नेपोलियन के सिपाही मिस्र में जा रहे थे तो एक शूशर नामी सिपाही ने रोज़िटा स्थान पर यह पत्थर प्राप्त किया जिस का नाम अब सांसारिक इतिहास में रौज़ीटा का पत्थर है। इस पर विचित्र (अनोखी) भाषा व चिन्हा द्वारा कुछ लिखा हुआ था तथा यूनानी भाषा में भी कुछ बातें थीं। डाक्टर टामसनेग और फेन फ्रांसिस ने लगातार प्रयत्न करते २ इसको पढ़ा। इस लेख का पढ़ना ही था कि योरोप देश को मिस्र की पुरानी भाषाका पता लग गया। जिसे सिखाने वाला अध्यापक अब कोई जीवित नहीं। इस पत्थर की लिखत ने जादू का काम किया तथा सब पश्चिमी भूभाग वालों ने एक मत हो निस्सन्देह कह दिया कि मिस्रदेश अत्यन्त उच्च कक्षा का सभ्य और विद्याओं तथा कलाकौशलादि का एक मात्र अनुपम घर था। यदि यह पत्थर उन विवेचना करने वाले पश्चिम भूभागियों के हस्तगत न होता तो फिर प्राचीन मिस्र के विषय में लोगों को सिवाय इस के और कुछ विचार न होता

कि वे (मिस्रदेशीय) अर्द्धशिक्षित और महामूर्ख थे। इस पत्थर की प्रतिष्ठा पश्चिम देशीय ही जानते हैं तथा अब इङ्गलैंड देश को घमण्ड (फख्र) है कि यह पत्थर अन्त में उस के भूपति श्री महाराज जार्ज ३ तीसरे के हाथ आगया ॥

बड़े ऊंचे २ स्तम्भ (मीनार) वाले देश का पुराना इतिहास, जैसे इस पत्थर की सहायता बिना जानना कठिन था वैसे ही वरन उस से सहस्रगुणे अधिक कठिनता सुवर्णमयी आर्यावर्त्त की प्राचीन विश्वासजनक तथा मनुष्यमात्र की अमूल्य सम्पत्ति (मीरास) वेद को जानना विवेचकों के लिये था। ऋषि मुनियों का पुराना समय तथा उस समय के प्राचीन मुख्य धारा वेद के स्वरूप को लोग कैसे जान सक्ते। यदि विरजानन्द अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का पारस पत्थर न खोज देते, इस पारस पत्थर का पता लगाने वाले विरजानन्द का नाम संसार के इतिहास में अति प्रतिष्ठा से लिया जायगा। इस पारस पत्थर के मिलने का ही यह फल हुआ कि संसार को पता लग गया कि वेदों में मूर्त्तिपूजा मनुष्य पूजा, अग्नि और अन्य तत्त्व पूजा नहीं है। वह वेद जिन को कि अन्धेरे में टटोलने वाले पुरुषों ने केवल प्रार्थनाओं का व्यर्थ पुस्तक समझ लिया था इस पारस पत्थर की सहायता से विद्यारूपी ज्योति के अनुपम प्राकृतिक सूर्य्य जाने गये हैं। तमोमय संसार को सच मुच सुवर्णमय कर दिया और इसी कारण हम अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का नाम पारस पत्थर रखते हुये विरजानन्द के बाधित हैं। ऋषियों की भाषा तथा वेदों का अर्थ समझने के लिये हर एक विवेचक को इस पारस पत्थरकी आवश्यकता है। और जितने भाष्य मैक्समूलर, विल्सन आदि साहबों ने इस पारस पत्थर

की सहायता बिना किये हैं वह मनुष्य को किसी सुवर्णमय समय का पता देने की जगह में लोहे के तुल्य अन्धकारमय समय की ओर आकर्षण करते हैं। संसार के प्राचीन इतिहास को जानने के लिये इस पारस पत्थर की प्रत्येक सत्यप्रिय को आवश्यकता है। मनुष्य की सच्ची स्वाभाविक भाषा समझने के लिये इस की सहायता उपयोगी है। तथा इस पारस पत्थर का ज्ञात होना सांसारिक इतिहास में एक बड़ा भारी स्मारक रहेगा॥

जब कि मथुरा में यह घटना हो चुकी तो इस के षट् मास पश्चात् कृष्ण शास्त्री के विद्यार्थी लक्ष्मण ज्योतिषी बहुत बीमार हुए और उन का पाप उन को भय देने लगा। कहते हैं कि जब मृत्युप्राय थे तो उन्होंने सेठ जी से कहा कि कदाचित् दण्डीजी ने मुझ पर कोई मारण मोहन का मन्त्र चलाया है। उन को प्रसन्न करना उचित है। तदनुसार सेठजी ने दण्डी को कहला भेजा कि आप ५००) की जगह १०००) सहस्र रुपये लेलें और क्षमा करें। दण्डीजी ने उत्तर दिया कि हमारा यह धर्म नहीं है। किसी मनुष्य के करने से कुछ नहीं होता, यह तुम को केवल भ्रम है। यदि वह मेरे उद्योग से बच जावे तो मैं सहस्र अपने पास से देने को उद्यत हूं। अनन्तर दूसरे दिन लक्ष्मण ज्योतिषी की मृत्यु हो गई। अष्टाध्यायी और महाभाष्य की महिमा को जानने पर वे अपने व्यतीत परिश्रम को जो कि सिद्धान्तकौमुदी आदि तुच्छ ग्रन्थों के पढ़ाने में व्यय हुआ व्यर्थ बीता समझते थे। जिस सूत्रने प्रथम उन को शास्त्रार्थ निमित्त सत्य साक्षी दिया वह यह है—"कर्त्तृकर्मणोः कृति"

सूर्य का दर्शन करने वाले का चित्त जैसे बनावटी धुयें-

दार ज्योति (चिराग) से घृणा करने लगता है इसी प्रकार दण्डी जी का हाल हुआ ॥

मनोरमा, शेखर, न्याय, मुक्तावली, सारस्वत, चन्द्रिका, पञ्चदशी, आदि नवीन बनावटी ज्योतियों के तुच्छ प्रकाश को अष्टाध्यायी आदि ऋषि मुनिकृत सूर्यग्रन्थों के सामने (मुकाबिले) बिलकुल व्यर्थ ही समझने लगे । अपनी पाठशाला में ऋषिकृत ग्रन्थों को पढ़ाते व तुच्छ ग्रन्थों की ओर से मनुष्यों के चित्त को हटाते थे। उस समय उन के विद्यार्थी पुण्डरीक, गोपीनाथ दक्षिणी सोमनाथ चौबे गङ्गादत्त तथा रङ्गदत्त आदि थे ।

तदनन्तर संवत् १९१५ में युगलकिशोर, विरञ्जीवलाल, सोहनलाल, गोपाल ब्रह्मचारी, नन्दन जी चौबे हुए। और ये सब अष्टाध्यायी, महाभाष्य पढ़ते थे। परन्तु ऋषि विरजानन्द की पूर्ण अभिलाषा परोपकार करने की थी। वे चाहते थे कि जिस प्रकार होसके संसार भर में ऋषिकृति ग्रन्थों और ईश्वर कृत वेदों का प्रचार हो जिस से भूला हुआ संसार सन्मार्ग को पा सके। उनको यह बात अच्छे प्रकार विदित हो चुकी थी कि मेरे वश में सूर्य का प्रकाश है। जिसके सामने कोई बड़ी चमकीली भी ज्योति नहीं ठहर सकती, परन्तु इस प्रकार के सामान पास वर्त्तमान न थे कि वे अपने महान् भाव को पूरा करने में सफलकार्य होते। तथापि यह अपना मन्तव्य (इरादा) उन्होंने कई बार प्रकाशित किया। तथा च एक वार्त्ता (वाकया) उनके इस ऋषिभाव प्रमाण में अत्यन्त ही अद्भुत है ॥

संवत् १९१७ के अन्त और संवत् १९१८ के आदि में आगरा नगर में राजाओं का दर्बार हुआ था जिस के उत्सव में

महाराज रामसिंह जी जयपुराधीश भी आगरा में पधारे थे। उन्हों ने दण्डी जी महाराज को बुलाया और सत्कारपूर्वक अपने यहां ठहराया। तीसरे दिन जब महाराजा जयपुर से दण्डी जी का मिलाप (मुलाक़ात) हुआ तो उस समय पं० केदारनाथ शास्त्री बूंदी के पं० पुरन्दरसिंह रीवां के पं० राज जोधन ओझा त्रिहुत के नैयायिक ये सब महाराजा के पास सुशोभित थे। जब दण्डीजी गये इन्हें देख कर महाराज अपने सिंहासन से नीचे उतर द्वार तक आकर स्वयं दण्डी जी का हाथ पकड़ के अपने साथ ले गये तथा राजसिंहासन पर उन को बैठा कर आप उन का मान रखते हुए नीचे बैठे। उस समय दण्डी जी के साथ दो विद्यार्थी युगलकिशोर व जगन्नाथ चौबे थे॥

विद्यार्थियों ने जाकर महाराज की सेवा में दण्डी जी की ओर से एक यज्ञोपवीत एक नारियल और कुछ मथुरा के पेड़े भेंट किये। भेंट स्वीकार करने के पश्चात् महाराजा ने दण्डी जी से वार्त्तालाप करना आरम्भ किया। अन्य बातें करते हुए यह प्रार्थना की कि किसी प्रकार आप हमें व्याकरण पढ़ा दो कि जिस से हम को वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो तथा आधुनिक सम्प्रदाय का विषय हमारे मनसे दूर हो। दण्डी जी ने कहा कि आप नहीं पढ़ सक्के। हां यदि ३ घण्टा प्रतिदिन परिश्रम करो तो पढ़ सक्के हो। यदि आप ऐसी प्रतिज्ञा करें तो हम पढ़ाने का वचन (वादा) दे सक्के हैं। जिस पर महाराजा रामसिंह जी मौन हो रहे और कुछ जवाब न दिया। फिर महाराजा बोले कि अष्टाध्यायी और महाभाष्य मुझे नहीं आसक्के, परन्तु आप अन्य ग्रन्थ बना कर उन की जगह में पढ़ावें। तब दण्डी जी ने कहा कि इन का कोई अन्य ग्रन्थ नहीं बन सक्ता। जैसे सूर्य्य के प्रतिबिम्ब को कोई तोड़ कर

नया नहीं कर सका यही अवस्था ठीक २ इन ग्रन्थों की है। तब महाराज रामसिंह जी ने कहा कि कोई ऐसा उपाय बताओ कि जिस से मेरी कीर्ति हो। दण्डी जी ने उत्तर दिया कि आप सार्वभौम सभा करें। तीन लक्ष रुपये आपका व्यय होगा। गवर्नर जेनेरल साहबसे प्रथम आज्ञा ले लें तत्पश्चात् जब सब पृथिवी के पण्डित एकत्र हों तो पण्डितों के लिये उचित दक्षिणा नियत करना योग्य है और शास्त्रार्थ का विषय यह हो कि अष्टाध्यायी महाभाष्य व्याकरण के मुख्य ग्रन्थ हैं तथा कौमुदी मनोरमा आदि ग्रन्थ मनुष्यकृत और अशुद्ध हैं। तथा न्याय मुक्तावली आदि और भागवतादि पुराण, रघुवंशादि काव्य, वेदान्त में पञ्चदशी आदि और नवीनसम्प्रदायी जितने ग्रन्थ हैं सब अशुद्ध हैं॥

जब सब विद्वान् एकत्र होंगे तो सब के सामने हम दो घण्टे में सब को निश्चय करा देंगे, तथा आप को विजयपत्र दिलवा देंगे। अतएव ऐसे शास्त्रार्थ की सफलता में विक्रमादित्य सदृश आप के नाम का शक (संवत्) प्रवृत्त करा देंगे। तब राजा ने प्रतिज्ञा की कि मैं सार्वभौम सभा करूंगा। इस समय महाराजा के दीवान पं० शिवदीनसिंह बोले कि आप जयपुर पधारें। दण्डी जी ने उत्तर दिया कि आप न कहें यदि राजा रामसिंह जी कहें तो हम चलें,परन्तु महाराजा रामसिंह जी ने कुछ उत्तर न दिया, चुप के सुनते रहे। उस समय दण्डी जी ने यह भी कहा कि यदि तुम इस काम को करोगे तो तुम्हारी कीर्ति होगी। नहीं तो जिस प्रकार कुत्ते और गधे मर जाते हैं उसी प्रकार तुम्हारे मरने पश्चात् तुम्हें कोई भी याद न करेगा। इतना कह कर दण्डी जी उठ खड़े हुये। चलते समय महाराजा रामसिंह जी ने २००) रुपये दो सुवर्ण मुद्रा (अशर्फी) और एक दुशाला भेट किया परन्तु उन्होंने

नहीं लिया और यह कह कर चल दिये कि हम रुपये लेने को नहीं आये इस की हमें कुछ परवाह नहीं। षट्मास पश्चात् महाराजा रामसिंह जी ने दो सौ रुपये और दुशालादि सब वस्तुयें मथुरा में भेज दिया और ॥) आठ आना प्रतिदिन इन के व्यय के निमित्त दिये जाने की आज्ञा कर दी। इसी प्रकार ।) प्रति दिवस महाराज विनयसिंह जी भी दिया करते थे और दण्डी जी इस में अपना जीवन निर्वाह कर लेते थे ॥

परोपकारी विरजानन्द जी विद्यार्थियों को पिताके समान पढ़ाया करते थे। उन के सुधार के लिये उन को दण्ड देते और शुभाचरण की ओर नित्य रुचि दिलाते थे। परन्तु उन की अत्यन्त इच्छा यह थी कि मेरा कोई भी विद्यार्थी ऐसा उत्कृष्ट हो सके जो परोपकार के लिये अपना जीवन लगाता हुआ मनुष्य जाति और प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग विस्तृत कर सके। संवत् १९१७ के चैत्र मास में एक सत्य के जिज्ञासु विद्यार्थी स्वामी दयानन्द नामा उस के समीप आगये। जिस प्रकार रेखागणित (उक्लेदिस) से अनभिज्ञ मनुष्य अफ़लातून का शिष्य नहीं हो सक्ता था उसी प्रकार व्याकरण का न जानने वाला विरजानन्द का शिष्य नहीं हो सक्ता था। व्याकरण जानने के कारण ही ऋषि विरजानन्द ने विद्यार्थी दयानन्द को शिष्य बनाया। तत्पश्चात् कौमुदी आदि ग्रन्थ जो उनके पास थे, यमुना नदी में फिंकवा दिये। और जब दयानन्द जी यमुना में निश्चय ग्रन्थ बहाकर आ गये तो ऋषि ने कहा कि अपनी बुद्धि से भी इन ग्रन्थों के विचार को पृथक् कर दो। तब अष्टाध्यायी पढ़ाऊंगा। दण्डी ने यह निश्चय कर लिया था कि भागवतादि पुराणों और सिद्धान्त आदि अनार्षग्रन्थों में संसार में अत्यन्त मूर्खता और स्वार्थपरता का राज्य फैला

रक्खा है। इसी कारण वे इन भ्रष्ट ग्रन्थों के कर्त्ताओं की ओर से अपने विद्यार्थियों को अत्यन्त घृणा दिलाना चाहते थे। तथाच इस कार्य की पूर्ति के लिये उन्होंने एक जूता रख छोड़ा था और सिद्धान्तकौमुदी के कर्त्ता भट्टो दीक्षित की मूर्त्ति को वे सब विद्यार्थियों से जूते लगवाते थे। क्योंकि उन का कथन था कि इसी नीच ने संस्कृतविद्या की कुञ्जी अष्टाध्यायी के प्रचार को रोकने के लिये यह क्षुद्र ग्रन्थ बना रक्खा है। कभी भागवत पुराण की पुस्तक को यह कहते हुये, अपने पांव लगा देते थे कि इन पुराणों ने ही भ्रमजाल फैला कर लोगों को विद्या बुद्धि और पुरुषार्थ से हीन कर दिया है। सब से बढ़ कर उच्च कक्षा की प्रतिष्ठा वे वेदों की किया करते थे तथा इन्हीं को सूर्यवत् स्वतः प्रमाण कहते थे।

अष्टाध्यायी, महाभाष्य व्याकरण में दण्डी जी ने पूर्ण योग्यता प्राप्त की, कि भारतवर्ष में कोई भी इनकी तुल्यता का घमण्ड नहीं कर सक्ता था। इनकी तीव्र बुद्धि और स्मरणशक्ति उच्च कक्षा की थी। नियमपालन में ऐसे पक्के थे मानो नियम के अवतार ही थे। सत्य से प्रेम और असत्य से अति घृणा इन के मन का सङ्कल्प था। इन की विद्या की ख्याति दूर २ तक फैली थी तथा मथुरा की अद्भुत वस्तुओं में यात्री लोग इन दण्डी जी को भी मानते थे॥

इनकी श्रेष्ठ विद्वत्ता की प्रशंसा से आकर्षित होकर ही स्वामी दयानन्द ने इन को अपना गुरु धारण किया था और निश्चय दयानन्द ऐसे महान् आत्मा की तृप्ति ऐसे ही विद्या के सूर्य्य से हो सक्ती थी॥

एक वार प्रिन्स आफ्वेल्ज़ श्री महाराणी राजराजेश्वरी के युवराज मथुरा में आये, और इन्होंने यहां के पण्डितों को

अपने समीप बुलाया, दण्डी जी अपने विद्यार्थियों सहित गये। वहां अङ्गरेज़ों ने उन से कुछ पूंछा तथा एक अङ्गरेज़ ने जो स्यात् उच्चाधिकारी था, वेद को श्रुति बहुत भद्दे और अशुद्ध उच्चारण से पढ़ी। सुनते ही दण्डी जी ने कहा कि न जाने ऐसे अशुद्ध उच्चारण करने वाले को वेद पढ़ने का अधिकार किसने दे दिया। दण्डी जी का सत्य कथन सुन के वह अंगरेज़ महाशय अप्रसन्न नहीं हुये। बरन् उन्हों ने उनकी वीरता का बखान किया और कहा कि हम ने ऐसा साहसी पुरुष कोई नहीं देखा॥ संवत् १९१० में गोपाललाल गोस्वामी गोकुल वाले ने दण्डी जी को बुलाया क्योंकि उन के यहां बम्बईके विख्यात पण्डित गट्टूलाल जी अष्टावधानी ठहरे थे।

दण्डी जी गयाप्रसाद व दामोदरदत्त विद्यार्थियों सहित वहां गये। इस समय इन्होंने गट्टूलाल जी से दण्डी जी का सम्भाषण कराया और शास्त्रार्थ का विषय "एधितव्यम्" था। दण्डी जा ने एधितव्यम् वाला श्लोक चौबे दामोदरदत्त से लिखवाया और स्वयं भाष्य किया जिस से गट्टू जी को परास्त किया। इस पर गोसाईं जी ने इन का बहुत ही आदर सत्कार किया व कहा कि मथुरा जी दूर हैं नहीं तो हम प्रत्येक दिन आकर दर्शन करते व पढ़ते। काशी में जो कि पण्डितों की राजधानी थी दण्डी जी की अद्भुत विद्या और शास्त्रबल की चर्चा फैल गई तथा जिन विद्यार्थियों की कठिनतायें काशी में न्यून नहीं हो सकी थीं वे काशी छोड़ कर मथुरामें विरजानन्द जी का शरण लेने लगे और देशदेशान्तरों के विद्यार्थी तथा पण्डित लोग इन से लाभ उठाने के लिये आने लगे। तथा व्रजकिशोर विद्यार्थी जा बराबर सात वर्ष काशी में पढे थे, काशी छोड़ कर दण्डी जी से मथुरा में अष्टाध्यायी का आरम्भ किया। तदनन्तर पं० उदयप्रकाश पं० हरिकृष्ण पं०

दीनबन्धु पं० गणेशीलाल ये सब दण्डी जी के विद्यार्थी बने ॥

इन्हीं दिनों का वृत्तान्त है, कि ग्वालियर के विख्यात वैयाकरण पं० गोपालाचार्य्य महाराज मथुरा में पधारे, सेठ गुरु सहायमल ने इन की वैयाकरण पदवी की शोभा सुन कर इन्हें एकसौ रुपया भेंट किया।

स्वामी विरजानन्दजी ने सेठजीसे कहा कि पण्डित समझ कर आप जितना चाहें उन्हें दान दें, परन्तु यदि आप वैयाकरण पदवी के विचार से देते हो तो हमें भी निश्चित करादें कि वे निस्सन्देह वैयाकरण हैं। गुरुसहाय ने इस का कुछ उचित उत्तर न दिया परन्तु विश्वेश्वर शास्त्रीने जो कि काशीके पण्डित थे उस समय मथुरा में वर्त्तमान थे, इस बात को उचित समझ और गोपालाचार्य्य जी से दण्डी जी का शास्त्रार्थ ठहराया। इस विख्यात शास्त्रार्थ के मध्यस्थ रङ्गाचार्य्य हुये। तथा वृन्दावन में रङ्गाचार्य्य जी के मन्दिर में दोनों दल एकत्र हुये। विषय यह था कि दो प्रकार के भाव महाभाष्य में लिखेहैं। आभ्यन्तर और बाह्य। गोपालाचार्य्य कहते थे कि महाभाष्य में नहीं है और दण्डी जी कहते थे कि महाभाष्य में हैं, तथाच दण्डी जी ने रङ्गाचार्य्य को सब पण्डितों के सामने दोनों भाव आभ्यन्तर और बाह्य महाभाष्य के 'सार्वधातुके यक्' इस सूत्र में बतला दिये। जिस से दण्डी जी की विद्वत्ता का यश सब पण्डितों में फैल गया। वइस से भी रङ्गाचार्य्य जी ने दण्डी जी की अत्यन्त ही प्रशंसा की। इस महान् विजय से दण्डी जी को और भी दृढ़ निश्चय हो गया कि ऋषिकृत ग्रन्थों के सामने मनुष्यकृत ग्रन्थ नहीं ठहर सक्ते और जहां तक हो सके संसार में वेद वेदाङ्ग उपाङ्ग का प्रचार करना उचित है।

दण्डी जी जैसे कौमुदी आदि व्याकरण के तुच्छ ग्रन्थों

का खण्डन बड़ी पुष्टता से करते थे उसी प्रकार अति पुष्टता से मथुरा ऐसे स्थान में रहकर भी जो हिन्दुओं का विख्यात मूर्त्तिस्थान है, मूर्त्तियों पन्थों तथा सम्प्रदायों और इन सब के मूल पुराणों का भी खण्डन करते थे ॥

जब कहीं किसी सम्प्रदाय का झगड़ा होता था तो लोग सम्प्रदाय का मूल जानने के लिये दण्डी जी की सहायता लेते थे। तथाच महाराजा रामसिंह जी के यहां से प्रायः दण्डी जी की सेवा में लिखित प्रश्न आया करते थे और दंडी जी सम्प्रदायियों के खण्डन के विषय में पत्र लिखा करते थे। इन के पत्रों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि कई सम्प्रदायी लोग राजाज्ञा से देश से निकाल दिये ॥

बड़े २ विख्यात पण्डित शास्त्री नैयायिक महाराज के निकट देश देशान्तरों से अपना बल दिखाने आये और शास्त्रार्थ में पराजय को प्राप्त हुये ॥

एक समय का वृत्तान्त है कि कोई तीव्रबुद्धि (ज़हीन) पण्डित दण्डी जी की बुद्धि की तीव्रता सुन के ईर्षा से पीडित दण्डी जी का पराजय करने के हेतु आया और इस ढंग से वार्त्तालाप आरम्भ किया कि अपने आप को बहुत थोड़ा कहना पड़े और दण्डी जी को बहुत। जब दण्डी जी कह चुकते तो वह तीव्रबुद्धि पण्डित कह देता कि महाराज आप ने कौन सी बढ़िया बात कही है यह तो बाल को भी विदित है। तथाच दण्डी जी के कथन के एक २ शब्द को सुना देता, थोडे ही मिनटों में दण्डीजी ताड़ गये कि यह कोई चालाक पण्डित है। फिर जो कुछ कथन किया उस में दण्डी जी ने साधारण संस्कृत शब्दों के स्थान में उन के ही समान वेद शब्दजो गणपाठ में आये हैं अधिकता से रक्खे तब चुप हो गये, गणपाठ का संस्कृत इस चालाक पण्डितने पूर्व नहीं सुना

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण क्रमांक 1788
दयानन्द-महिला ... कुरुक्षेत्र

था अतएव तीव्र होने पर भी सारा कथन तो क्या आधे को भी याद न रख सका। और कहने लगा कि महाराज आप निश्चय विद्या के सूर्य्य हैं। मैंने कई बड़े से बड़े पण्डितों को इस ढङ्ग से पराजित कर दिया था परन्तु आप की प्राचीन संस्कृत तथा वैदिक शब्दों की योग्यता मुझ को एक पग भी चलने नहीं देती। जिन शब्दों का मुझे संस्कार ही नहीं और न जिन के अर्थ समझ सक्ता हूं उन को मेरी बुद्धि कैसे स्मरण रख सक्ती॥

मुड़सान में रङ्गाचार्य्य के गुरु अनन्ताचार्य्य से दण्डीजी का एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ जो कि तीन मास तक होता रहा परन्तु अन्त को अनन्ताचार्य्य भाग गये और अबानी शास्त्रार्थ करने की शक्ति न रख कर कहने लगे कि अब गृह को जाकर पत्र द्वारा शास्त्रार्थ करूंगा॥

बालब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होने के कारण उन का मस्तिष्क एक पुस्तकालय का काम देता था, जिस ग्रन्थ को ध्यान पूर्वक एकबार सुना बस वह उनका हो गया, वे अपनी सारी विद्या कण्ठ रखते थे, कविता करने में बड़े प्रवीण थे परन्तु इनको ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रचार की अभिलाषा थी अतएव कोई अपनी नवीन रचना नाम के निमित्त छोड़ना कदापि न चाहते थे। दुःखों और शारीरिक कष्टों को इन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य्य के कारण सहा ही नहीं बरन जीता हुआ था। तथा यह अखण्ड ब्रह्मचारी ही होने का कारण था कि उन्होंने संसार की काया पलटाने के लिये ऋषियों के सदृश वैदिकप्रकाश को दर्शा दिया।

दण्डी जी का भोज्य सदा साधारण ही रहा है। आदि में वे कई बार दूध या केवल खरबूजा या केवल पूरी या केवल नारङ्गी और कई बार सौंफ दूध में पकाकर कुछ दिन ही नहीं

घरन एक मास तक खाया करते थे । दण्डी जी मालकङ्गनी और लौङ्ग अधिक खाया करते और कहते थे कि यह बुद्धिवर्द्धक वस्तुयें हैं । भिन्न २ ऋतुओं में वैद्यक शास्त्रानुसार कोई २ विशेष वस्तु खाना छोड़ देते थे ॥

एक वार जब कि उन का सब शरीर सूज गया था तो गङ्गा के किनारे वैद्यकशास्त्र में लिखी एक औषध * का सेवन करते थे यहां तक कि शरीर के ऊपरी भाग की बहुत खाल उतर गयी और फिर दुबारा कञ्चनकाया हो गई । वे कभी २ मेंथी का साग आध पाव घी डाल कर खाते व कभी कभी सवासेर दूध और छटांक सोंठ का सेवन करते थे ।

छुहारे की गुठली कुटवा कर दूध में डाल कर उस दूध को पीते थे । एक समय सन्दूक में सङ्खिया पड़ा हुआ था सेंधा नमक के विचार से तोला भर सङ्खिया खा गये । खाने के थोड़ी देर पश्चात् विष चढ़ने लगा । मकान पर चार बड़े मटके पानी के भरे हुये थे । शनै २ उन मटकों में से लोटे से पानी निकाल कर सर पर डालते रहे । संध्या तक यही क्रिया करते रहे जिस से सर्वथा क्लेशरहित हो गये ॥

मिस्टर पोस्टली साहब जब स्वल्पकालिक कलक्टर हो कर मथुरा में आये तो एक दिन सैर करते हुए विरजानन्द जी के गृह के नीचे से निकले । उनके सहवर्त्ती ने दण्डी जी की विद्वत्ता की अति प्रशंसा की । जिस को सुन कर वे दण्डी जी से मिलने को गये और दण्डीजी से कहने लगे कि यदि हमारे करने योग्य कोई कार्य हो तो आज्ञा कीजिये । दण्डी जी ने कहा कि यदि हमारी सेवा कर सक्ते हो तो भट्टोजी दीक्षित

---

* नोट—भिलावां इस औषध का नाम प्रायःज्ञात होता है । ठीक २ पढ़ा नहीं जाता (आत्माराम)

के जितने बनाये हुये कौमुदी के ग्रन्थ हैं उनको भारतवर्ष से या केवल मथुरा से लेकर आग में फूंक दो या यमुना में प्रवाह कर दो ॥

एक समय आधीरात के लगभग विचारते हुए किसी सूत्र का समाधान मन में ठीक हो गया। मारे हर्ष के गृह से उठे और विद्यार्थी उदयप्रकाश के गृह के द्वार पर जाकर पुकारा। गुरु का शब्द सुन वह जागा और पूंछने लगा कि महाराज आज्ञा कीजे। कहने लगे कि इस समय मुझे अमुक सूत्र का समाधान याद आया है जो शेष जी से भी नहीं हो सका है। यह हर्ष सूचना देने आया हूं। ऐसा न हो कि भूल जाऊं अतएव उचित है कि लिख लो। तथाच उसने लिख लिया।

उनका ऊंचान (कद) मियाना (मध्यम) और वर्ण गौर मिश्रित था। जब ७१ वर्ष के हुये तो अपनी सब पुस्तकें बरतन, कपड़े और तीन सौ रुपया नकद यानी सब ५२५) के द्रव्य को अपने विद्यार्थी युगलकिशोर के नाम रजिस्टरी करा दी कहतेहैं कि मृत्युसे दो वर्ष पूर्व योगी विरजानन्दने विद्यार्थियों से कह दिया था कि मैं शूल की पीड़ा से अमुक दिन शरीर त्यागूंगा। और जो एक दो सेठ मरनेसे कुछ दिन पूर्व मिलने को आये उन से कहा कि भविष्य में यहां न आना।

ऋषियों के छोड़े हुये ग्रन्थ रूपी धन का प्रेमी, वेदों को निष्कलङ्क ज्योति को ऋषिकृत ग्रन्थों के सहारे से दर्शाने वाला ब्रह्मचारी, यौगिक शब्दों के सच्चे पारस पत्थर से तमोमयी लोहे को चमकते हुये सुवर्ण में बदलने वाला ऋषि, मूर्त्तिपूजा के गढ़ में रह कर मूर्त्तिपूजा को जड़ पर कुल्हाड़ा मारने वाला वीर, योगसमाधि से आत्मशक्तियें बढ़ाने वाला महात्मा, परोपकार की रक्षा से विद्यार्थियों के मन में वैदिक ज्योति

पहुंचाने वाला गुरु, बिना शोक के परलोक गमन को उद्यत होता है।

तथा कुंवार के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को सोमवार के दिन विक्रमीय संवत् १९२५ में अपने पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़ कर सज्जनों के हृदय अपने वियोग से सदैव के लिये भेदन कर जाता है।

इस ऋषि का विद्यारूपी प्रकाश उस के सब विद्यार्थियों के लिये समान था परन्तु मट्टी व कांच पर एक ही प्रकाश का भिन्न २ प्रभाव पड़ता है ऋषि के अनेक विद्यार्थियों में से केवल एक दयानन्द सरस्वती के ही शुद्ध हृदय ने उस प्रकाश को निकाल जगत् में फैला दिया।

ऋषि विरजानन्द का महत्त्व और श्रेष्ठता उन वचनों से प्रकट हो सकती है जो कि उन की मृत्यु के समाचार सुनने पर उन के योग्य विद्यार्थी स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने मुख से इस प्रकार निकाले थे कि "आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया" ॥

हीरा (मणि) की महिमा सर्राफ़ (रत्नपरीक्षक) से पूछिये। सुक़रात की योग्यता अफ़लातून जानता है। ऋषि विरजानन्द की महिमा ऋषि दयानन्द पहिचानता है। यदि किसी मिथ्याप्रशंसक (खुशामदी) के ये वचन होते तो हम उस को अयुक्त कह सकते थे परन्तु ऋषि दयानन्द का उनको सूर्य कहना कुछ कारणवश सम्भव है। योगी विरजानन्द का महत्त्व इस से बढ़ कर हम को तब प्रतीत होता है जब हम को यह ज्ञात होता है कि परोपकारी बालब्रह्मचारी आर्य समाज का आदिकर्त्ता (बानी) वैदिक धर्म का दर्शक महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के अन्त और वेदभाष्य के प्रत्यङ्ग

की समाप्ति में अपने को अभिमान (फ़ख़) से स्वामी विर-जानन्द सरस्वती का शिष्य लिखता है ।

विवेचक लोग स्वामी दयानन्द के गुरु परम * विद्वान् ऋषि विरजानन्द के परोपकार को नहीं भूल सक्ते । तथा सत्यप्रिय लोगोंके ज्ञान नेत्रों के सन्मुख महात्मा विरजानन्द निष्कलङ्क ज्योति का प्रकाश करनेके निमित्त पुराणादि मिथ्या कपोलकल्पित और कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के विघ्नों को शूरवीर के सदृश आर्ष ग्रन्थ रूपी खड्ग बल के द्वारा एक हाथ से काटता और दूसरे से वेदशास्त्रों के गुप्तकार्यों की यौगिक कुञ्जी जो कि महाभारत के घोर युद्ध पश्चात् लुप्तप्राय हो गई थी मनुष्य मात्र के हाथ में देने के लिये एक अद्भुत परोपकारी विद्यार्थी स्वामी दयानन्द को सौंपता हुआ सब मुख ऋषि के रूप में दृष्टिगोचर होगा ॥

द०—जगदम्बाप्रसाद वर्मा

प्रयागनिवासी अनुवादक..

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण 1788
आनन्द म...

इति

---

* सत्यार्थप्रकाश के अन्त में यह शब्द स्वयं दयानन्द जी ने उन के महत्त्व में प्रयोग किया है ॥

देखने योग्य अत्युपयोगी पुस्तकें।

ध्यानयोगप्रकाश।

इस पुस्तक में श्री० लक्ष्मणानन्द जी ने बड़ी योग्यता से योग की क्रियाओं का वर्णन किया है। प्रथम यह हाथों हाथ बिक चुका है, अब द्वितीय बार छपा है, अवश्य मंगाइये। सजिल्द का मू० १।)

बालसत्यार्थप्रकाश।

इस पुस्तक को 'सत्यार्थप्रकाश' के आधार पर श्री० पं० शिवशर्मा जी उपदेशक आर्यप्रतिनिधि—सभा ने लिखा है जो कि आर्यबालक तथा बालिकाओंके लिये अत्युपयोगीहै यह नया पुस्तक है, अतः मंगाने में शीघ्रता कीजियेगा। मूल्य ।=) है।

नीतिशतक।

इस पुस्तक में संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में श्रीभर्तृहरि महाराज के वाक्यों का वर्णन किया है। जिनको नीतिविषयक ज्ञान प्राप्त करना हो अवश्य मगावें। मूल्य ।)

छत्रपति शिवाजी—लाला लाजपतराय जी लिखित ॥)

रोशन आरा ≡) भौंदूजाट और पादरी साहब का मुबाहिसा -)॥ मुक्ति और पुनरावृत्ति =)॥

हक़ीक़तराय धर्मी!

ऐसा कौन हिन्दुबालक होगा जिसने धर्म पर निछावर होने वाले प्यारे हकीकतराय का पवित्र नाम न सुना होगा, यह उसी धर्मवीर की करुणापूर्ण जीवनी हिन्दू बालकों के लिये हिन्दी में प्रकाशित की है। मूल्य -)॥

हनुमान् जी का जीवनचरित्र।

स्त्री और पुरुष दोनों के पढ़ने के लिये उत्तम है। म० १=)

मुहम्मद साहब का जीवनचरित्र ।

भले प्रकार इस में बताया गया है कि इन्होंने क्या २ काम किये हैं ॥)

सिक्खों के दश गुरु

सिक्खों के नानक आदि दश गुरुओं का नाम किस ने नहीं सुना ? कौन हिन्दू उन महात्माओं का कृतज्ञ नहीं ? कौन वीरशिरोमणि गुरु गोविन्दसिंह जी और उनके बालकों की शूरता नहीं जानता ! जिस समय यह देश म्लेच्छाक्रान्त था उस समय हिन्दुओं पर जो २ विपत्ति पड़ी उन के आज स्मरणमात्र से रोमांच खड़े हो आते हैं । एवं विकट समय में, विपरीत काल में, कठोर शासकों के शासन में, सिक्ख गुरु महोदयों ने किस प्रकार अपने जीवन की आहुति देकर महान् पक्षद्वारा हिन्दू जाति का इष्ट साधन किया वह हर पुरुष से ज्ञातव्य है । इस लिये हम ने उन्हीं धर्मगुरु उन्हीं प्रतापी उन्हीं वीरचक्रचूड़ामणि नानकादि दश गुरुओं का जीवन चरित्र सब के सुभीते के लिये मुद्रित कराया है । मूल्य ॥) मात्र रक्खा है ॥

न्यायदर्शन—श्री स्वामी दर्शनानन्द जी कृत यह न्याय दर्शन की टीका अन्य सब टीकाओं से सरल तथा उत्तम है जोकि प्रत्येक तार्किक विज्ञ के अवलोकन योग्य है । मूल्य १।

दृष्टान्तसमुच्चय—इस पुस्तक में ऐसे २० दृष्टान्त का समावेश किया है जोकि अत्यन्त मनोरञ्जक, श्रोता तथ पाठकों के हृदयपद्म के प्रकाशित करनेमें अद्वितीय और प्रत्येक उपदेशकों को लाभदायक हैं । पुस्तक अत्युत्तम कागज़ तथ सुन्दर टाइप से विभूषित होने पर भी मूल्य १।) है ।

पुस्तक मिलने का पता—

पं० शङ्करदत्त शर्मा, वैदिकपुस्तकालय, मुरादाब